नेपाली क्रांति नये मोड़ पर

''अप्रैल अंत में सत्ता संभालने के बाद सातों दलों की सरकार ने जनवादी गणतंत्र की दिशा में एक–एक कर कदम उठाये हैं। राजा से सेना का नियंत्रण छीनकर, उसकी राज परिषद भंग कर, नेपाल को धर्म–निरपेक्ष राज्य घोषित कर, नेपाल सरकार और सेना से 'शाही' शब्द हटाकर, कानून बनाने में राजा के वीटो को समाप्त कर राजा को शक्तिहीन कर दिया गया है। एक तरह से वह अभी ही नाममात्र का राजा बन गया है हालांकि शासक हलकों में उसके पर्याप्त समर्थक मौजूद हैं।

''वर्तमान सरकार नयी संविधान सभा के चुनाव की ओर भी क्रमशः बढ़ रही है। नयी संविधान सभा बैठने पर नेपाल पूर्णतः जनवादी गणतंत्र घोषित होता है या राजा नाम के लिए बच जाता है, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि संविधान सभा में शक्तियों का संतुलन क्या होता है। ज्यादा संभावना गणतंत्र की ही है। यदि संविधान सभा में माओवादी बहुमत में नहीं भी होते हैं तो भी नेपाली कांग्रेस और एमाले को जनवादी गणतंत्र के अपने नारे से मुकरना मुश्किल होगा। जो भी हो, नेपाल की राजनीति में राजशाही–सामंतशाही का खात्मा लाजिमी है, नाम मात्र का राजा भले ही बच जाय।

'' यहां यह ध्यान रखने की बात है कि आज की जो विश्व परिस्थितियां है–चौतरफा साम्राज्यवाद, पूंजीवाद का प्रभुत्व तथा नेपाल की जो अपनी स्थिति है–अत्यल्प संसाधनों वाला छोटा सा भू–आवेष्ठित देश, उसमें समाजवादी ही नहीं जनवादी क्रांति की भी अपनी सीमाएं हैं। इसमें जनवादी कार्यभार मुख्यतः पूरे होते हुए भी उस तरह पूरे नहीं हो सकते कि देश साम्राज्यवादी–विस्तारवादी प्रभावों से पूर्णतः मुक्त हो जाये। ये साम्राज्यवादी–विस्तारवादी प्रभाव देश के भीतर जनवाद विरोधी तत्वों के मामले में भी कुछ हद तक अपना असर डालते रहेंगे।

''नेपाल की राजनीति में इस मुकाम पर असल सवाल जनवादी क्राति से संबंधित नहीं है। वह तो सारतत्व में पूरी हो चुकी है और साल–दो साल में व्यावहारिक तथा कानूनी–संवैधानिक रूप ग्रहण कर लेगी। अहम सवाल उससे आगे के रास्ते से संबंध रखता है। क्या नेपाल जनवादी गणतंत्र से, संसदीय लोकतंत्र से आगे जा पायेगा? क्या नेपाल और विश्व की परिस्थितियां उसे आगे जाने की इजाजत देती हैं?

''कहने की बात नहीं कि यदि संविधान सभा में गैर माओवादियों का बहुमत होता है तो सारा मामला संसदीय लोकतंत्र तक, पूंजीवादी संसदीय लोकतंत्र तक सिमट कर रह जायेगा। तब फिर से शुरू हुआ जनयुद्ध भी इसे आगे नही ठेल पायेगा।

''यदि संविधान सभा में माओवादियों का बहुमत होता है तब क्या होगा? तब जनवादी गणतंत्र से आगे समाजवाद की ओर जाने की संभावना पैदा होती है। लेकिन तब समाजवाद की ओर जाने में दो नयी बाधायें आयेंगी। पहली बाधा तो खुद माओवादी हैं। पिछले चार–पांच सालों में इन्होंने बीसवीं सदी के कम्युनिस्ट आंदोलन के संबंध में, सोवियत संघ–चीन इत्यादि में समाजवाद के निर्माण के संबंध में, बहुदलीय राजनीतिक प्रणाली के संबंध में, क्रांति पूर्व व बाद की कम्युनिस्ट पार्टियों की कार्यपद्धति के संबंध में जो बातें कही हैं वे बहुत चिंता पैदा करती हैं। वे सीधे–सीधे सामाजिक जनवादी भटकाव प्रतिबिंबित करती हैं। नेपाली क्रांति के सामने बाहरी और भीतरी जितनी बाधाएं खड़ी हैं, उन्हें देखते हुए ये भटकाव नेपाल की नयी जनवादी क्रांति के इससे आगे के विकास में बहुत घातक हैं। इन भटकावों के कारण हो सकता है कि संविधान सभा और संसद में बहुमत के बावजूद खुद माओवादी पूंजीवादी लोकतंत्र के दायरे में सिमट कर रह जायें।

'' नेपाली क्रांति के समाजवाद की ओर विकास में दूसरी प्रमुख बाधा वस्तुगत यथार्थ है। नेपाल एक संसाधन विहीन, पिछड़ा, छोटा सा देश है। अपने दम पर समाजवाद का निर्माण करने की परिस्थितियां (संसाधन) इसके भीतर नहीं हैं। दुनिया में आज कोई समाजवादी देश नहीं है जो इसकी मदद कर सके। उलटे दुनिया के सारे पूंजीवादी शासक–साम्राज्यवादी और गैर साम्राज्यवादी दोनों–इस क्रांति के समाजवाद की ओर बढ़ने के विरोधी होंगे। समाजवाद की ओर बढ़ने पर इस क्रांति को आर्थिक प्रतिबंधों समेत अन्य तमाम बाधाओं का सामना करना पड़ेगा। वस्तुतः भारतीय विस्तारवादी और साम्राज्यवादी इस पर उम्मीद लगाये हुए हैं कि वे इसी माध्यम से नेपाली क्रांति को आगे बढ़ने से रोक लेंगे। माओवादियों को पूंजीवादी लोकतंत्र के दायरे में बांध देंगे।''
('नेपाली क्रांति जिंदाबाद', लाल सलाम अंक –13, जुलाई 2006)

नेपाली क्रांति के विकास और संभावनाओं–चुनौतियों के बारे में उपरोक्त बातें अप्रैल 2006 के जनांदोलन के बाद के कुछ महीनों के भीतर की हैं। तब से अब तक छः साल बीत चुके हैं। इन छः सालों के बाद अब नेपाली क्रांति और नेपाली समाज कहां खड़े हैं?

इन छः सालों में एक संविधान सभा का चुनाव हुआ, वह गठित हुयी, उसने राजशाही का खात्मा कर नेपाल को धर्म निरपेक्ष जनतांत्रिक गणराज्य घोषित किया जिसे संघीय होना था, उसने एक अंतरिम संविधान बनाया जिसके तहत नया संविधान निर्मित होने तक देश चलना था, वह दो साल के बदले चार जीवन दान पाकर चार साल चलती रही है और अंततः 27 मई 2012 की आधी रात को बिना नया संविधान बनाए ही स्वतः भंग हो गई। इस बीच संविधान सभा गठित होने के पहले और उसके बाद एक के बाद एक कई सरकारें बनती–बिगड़ती रहीं जिसमें कुछ एक दो पार्टियों की सरकारें थी तो कुछ कई पार्टियों की या सभी पार्टियों की 'राष्ट्रीय सहमति की सरकार'। नेपाल की माओवादी पार्टी, जो अब एकीकृत नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी/माओ विचारधारा) के नाम से जानी जाती है, एकाधिक बार सरकार में शामिल हुयी। वस्तुतः संविधान सभा गठित होने के बाद सबसे पहले सरकार माओवादियों ने ही बनाई (प्रचंड के प्रधानमंत्रित्व में) तथा जब संविधान सभा भंग हुयी तब भी माओवादियों की ही सरकार थी (बाबूराम भट्टराई के प्रधानमंत्रित्व में) जो अंत से पहले 10–15 दिनों तक 'राष्ट्रीय सहमति की सरकार' थी।

आज देश अंतरिम संविधान के तहत चल रहा है क्योंकि नये संविधान का निर्माण नहीं हो पाया। बाबूराम भट्टराई के नेतृत्व वाली सरकार ने अंतिम समय में घोषित किया कि नयी संविधान सभा गठित करने के लिए 22 नवंबर को चुनाव कराये जायेंगे। उनकी इस घोषणा के बाद ज्यादातर पार्टियों ने 'राष्ट्रीय सहमति की सरकार' से अपने आप को अलग कर लिया। वे नयी 'राष्ट्रीय सहमति की सरकार' की मांग कर रहे हैं। इसी के साथ पुरानी संविधान सभा को कुछ समय के लिए पुनर्जीवित कर संविधान बनाने की बातें भी हो रही हैं।

लगातार तीखे संघर्षों से गुजरते हुए अंततः संविधान सभा नेपाली राज्य के संघीय ढांचे के सवाल पर अटक गई। जहां माओवादी और मधेसी पार्टियां विभिन्न जनजातियों–भाषाओं–समूहों इत्यादि को ध्यान में रखते हुए एक संघीय ढांचे की बात कर रहे थे वहीं नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) मिश्रित प्रदेशों और केन्द्रीकृत ढांचे की। इस मसले पर अंत समय तक समझौता नहीं हो पाया।

इस बीच, संविधान सभा भंग होने के बामुश्किल एक महीने पहले माओवादियों की विद्रोही सेना, जन मुक्ति सेना का, जिसने नेपाली क्रांति को 2006 में राजशाही के खात्मे तक पहुंचाया था, नेपाल की सेना में एकीकरण हो गया। बैरकों में रह रहे करीब सत्रह हजार लड़ाकों में से करीब साढ़े तीन हजार नेपाली सेना में एकीकृत हुये। बाकी सेवानिवृत्ति लेकर घर चले गये। गौरतलब है कि करीब 9 हजार

लड़ाकों ने सेना में एकीकृत होने की इच्छा जाहिर की थी और अंततः सभी पार्टियों में छः हजार को एकीकृत करने पर सहमति बनी थी। इस तरह 2005 के समझौते की 'शांति की प्रक्रिया' पूरी हुयी।

इस पूरे दौर की एक महत्वपूर्ण बात यह है कि नेपाली क्रांति के इस विकास और इसमें माओवादी पार्टी तथा खासकर इसके प्रचण्ड व बाबूराम भट्टराई सरीखे नेताओं की भूमिका को लेकर माओवादी पार्टी में मतभेद पैदा हुए जो समय के साथ तीखे होते चले गये। जहां प्रचण्ड और भट्टराई वाला धड़ा (दो तिहाई बहुमत) किरन और गौरव–बादल वाले धड़े को वामपंथी संकीर्णतावादी बता रहा था वहीं दूसरा वाला पहले को दक्षिणपंथी–संशोधनवादी। अंततः 18 जून को माओवादी पार्टी विभाजित हो गई। किरन–बादल धड़े ने अलग होकर एक नयी पार्टी–नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी, माओवादी के गठन की घोषणा कर दी।

नेपाली क्रांति को यदि उसके समग्र विकास के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखें तो बीते छः साल वस्तुतः क्रांति को आगे ले जाने और उसे पूंजीवादी जनवादी गणतंत्र तक समेट देने के बीच संघर्ष के तौर पर दीखते हैं जिसमें ज्यादातर मामलों में पूंजीवादी शक्तियां सफल रही हैं। इस संघर्ष में दो प्रमुख पक्ष रहे हैंः एक ओर थे माओवादी जो सर्वहारा का प्रतिनिधित्व कर रहे थे और जो क्रांति को आगे ले जाना चाहते थे, दूसरी ओर थे नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) जो पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहे थे और क्रांति को पूंजीवादी जनवादी गणराज्य तक समेट देना चाहते थे, मधेसी पार्टियां भी पूंजीवादी पार्टियां हैं और उनका भी वर्गीय हित पूंजीवादी जनवादी गणराज्य में ही है लेकिन अपनी क्षेत्रीय–संघीय आकांक्षाओं के चलते वे माओवादियों और उनके विरोधियों के बीच झूलने को मजबूर थे। उनकी वर्गीय पक्षधरता उन्हें नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) की ओर ले जाती थी तो क्षेत्रीय–संघीय आकांक्षा माओवादियों की ओर।

नेपाल में राजशाही को अप्रैल–मई 2006 में ही राजा की शक्तियों को छीनकर शक्तिहीन कर दिया गया था लेकिन जब दो साल बाद 28 मई 2008 को अपनी पहली बैठक में संविधान सभा ने राजशाही के अंत की घोषणा करके नेपाल को एक गणराज्य घोषित कर दिया तो एक प्रक्रिया अपने अंजाम तक पहुंच गई। एक अंतरिम संविधान की घोषणा के साथ यह कानूनी वैधानिक भी हो गई। इसके बाद बल्कि इसके साथ एक दूसरी प्रक्रिया शुरू हो गई। वैसे ज्यादा सही–सही कहें तो यह प्रक्रिया अप्रैल 2006 में राजा ज्ञानेन्द्र के आत्म समर्पण के साथ ही शुरू हो गयी थी जिसने बाद में संविधान सभा में अपना असली रूप ग्रहण किया।

जब अप्रैल 2006 में राजा ज्ञानेन्द्र ने जनांदोलन के सामने समर्पण किया तो उस समय तक नेपाल में वर्गों का एक संतुलन कायम हो गया था। बाद के छः वर्षों में मोटा–मोटी यह संतुलन कायम रहा और नेपाली समाज का भविष्य तय करता रहा। यह संतुलन 1996 से शुरू हुए जनयुद्ध के द्वारा 2004 तक क्रमशः निर्मित हुआ था और बाद के दो सालों में उसने नया रूप ग्रहण किया।

जब 1996 में नेकपा (माओवादी) के नेतृत्व में जनयुद्ध शुरू हुआ तो नेपाल एक ऐसा देश था जो औपचारिक तौर पर तो संवैधानिक राजतंत्र था पर जिसमें वस्तुतः राजशाही और सामंती शक्तियां हावी थीं। 1990 के प्रथम जनांदोलन ने जिन जनतांत्रिक आकांक्षाओं को जन्म दिया था वे नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) की समझौतापरस्ती के कारण बस 'पंचायती जनतंत्र' नामक एक ऐसी अधूरी चीज तक पहुंच पायी जिसमें वास्तव में निर्णायक शक्ति राजशाही ही थी। लेकिन जनता की जनतांत्रिक गणराज्यीय आकांक्षाएं मुरझाई नहीं और जैसे ही माओवादियों ने जनयुद्ध शुरू किया, व्यापक जनता उनके साथ लामबंद हो गई।

राजशाही के नियंत्रण वाले 'पंचायती जनतंत्र' में नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) राजशाही के साथ समझौता किये हुए थे। जहां पूंजीवादी नेपाली कांग्रेस में पर्याप्त मात्रा में पुरातन शक्तियां मौजूद थी वहीं नेकपा (एमाले) ऐसे मध्यम वर्गीय लोगों की पार्टी थी जो वर्ग संघर्ष के तीखे होने से हर कीमत पर बचना चाहते थे। छोटे मझोले पूंजीपति और धनी किसान भी इसके साथ थे। (नेपाल जैसे पिछड़े देश की खास स्थितियों में इन सबने कम्युनिज्म का चोला धारण किया था या अपने को कम्युनिज्म का समर्थक घोषित किया था। यह नियति को चुपके से छलने का प्रयास था।) अपने चरित्र के अनुरूप ही राजशाही से संघर्ष कर उसे उखाड़ फेंकने के बदले वे उसके सामने घुटने टेक देते थे। भारतीय विस्तारवादियों और साम्राज्यवादियों का इस गठजोड़ को समर्थन था क्योंकि यह उसके पुराने समय से चले आ रहे संबंधों को सुरक्षित रखता था। लेकिन इस गठजोड़ के विभिन्न धड़ों के वर्गीय आधार में ही यह निहित था कि वर्ग संघर्ष की किसी भिन्न अवस्था में यह गठजोड़ छिन्न–भिन्न हो जाये। यह स्थिति 2001 में राजा वीरेन्द्र के परिवार के कत्लेआम के बाद बननी शुरू हुयी और अगले दो–तीन सालों में परिपक्व हो गई।

2004 तक जनयुद्ध ने विस्तार करते हुए ज्यादातर देहाती क्षेत्रों को अपने कब्जे में ले लिया। पहाड़ी इलाकों में ही नहीं, तराई के मैदानों में भी विद्रोही सेना का कब्जा हो गया। अब जनयुद्ध रणनीतिक आक्रमण के दौर में दाखिल हो गया। अब सत्ता के शहरी केन्द्र, जिले के मुख्यालय और राजधानी काठमाण्डू इसके निशाने पर आ गये। लेकिन यहां पर आकर शक्तियों का नया संतुलन उजागर हुआ।

राजा ज्ञानेन्द्र ने माओवादियों से लड़ने के लिए सारी शक्तियों को अपने हाथ में केन्द्रित किया और नेपाली कांग्रेस तथा नेकपा (एमाले) जैसी बुर्जुआ शक्तियों को किनारे लगा दिया। ऐसा करते हुए उसने उस आधे–अधूरे 'पंचायती जनतंत्र' के सुधार को भी कूड़ेदान में फेंक दिया जिस पर नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) ने खुद को कुर्बान किया था। वास्तव में 2001 का शाही कत्लेआम इसी के लिए भारतीय विस्तारवादियों और अमेरिकी साम्राज्यवादियों की मदद से ज्ञानेन्द्र द्वारा रचा गया था। पुरानी व्यवस्था को बचाने का उन्हें यही तरीका सूझा था। ज्यादा नंगे रूप में पुरानी व्यवस्था की ओर लौट कर ही वे उस बचा सकते थे। लेकिन इसी के द्वारा वे इसे और ज्यादा बड़े और व्यापक हमलों के लिए अरक्षित कर रहे थे।

इस अवस्था में पहुंचकर नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) के लिए अब राजशाही से तालमेल बैठाना मुश्किल होने लगा क्योंकि राजशाही ने इसकी गुंजाइश नहीं छोड़ी थी। अब इनके पाला बदलने का समय आ गया था।

दूसरी ओर जब शासन के शहरी केन्द्रों पर कब्जे के लिए माओवादियों और राजशाही के बीच जंग शुरू हुयी तो धीमे–धीमे माओवादियों के सामने स्पष्ट हो गया कि वे जंग के द्वारा शहरी केन्द्रों पर कब्जा नहीं कर सकते। राजशाही की सैनिक ताकत के पीछे भारतीय विस्तारवादी और साम्राज्यवादी खड़े थे। जन मुक्ति सेना इन्हें पराजित नहीं कर सकती थी। इससे भी बड़ी बात यह थी कि शहरी क्षेत्रों में नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) के प्रभाव के चलते वहां जन विद्रोह सफल नहीं हो पा रहा था। 8.9 सालों के जनयुद्ध के द्वारा वर्गीय संतुलन माओवादियों के पक्ष में काफी झुका था पर वह इतना भी नहीं था कि माओवादी शहरों में सफल विद्रोह करने में कामयाब हो जाते।

नेपाल में वर्ग संघर्ष की इसी अवस्था में, जबकि राजशाही समाज में अलग–थलग पड़ चुकी थी, माओवादियों और बुर्जुआ पार्टियों के बीच समझौते की जरूरत और संभावना पैदा हुयी जो नवंबर 2005 में नेकपा (माओवादी) तथा सात राजनीतिक पार्टियों के बीच 12 सूत्रीय समझौते में मुकम्मल हुयी। इसके तहत राजशाही की समाप्ति कर एक नये संविधान का निर्माण किया जाना था। नेपाल में शान्ति और जनतंत्र को बहाल किया जाना था। अब तक भारतीय पूंजीपति वर्ग भी इस नतीजे पर पहुंच चुका था कि राजशाही को पुराने रूप में बनाये रखना उसके दूरगामी हितों के लिए फायदेमंद नहीं है। वस्तुतः 12 सूत्रीय समझौते में भारतीय शासकों की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

जब अप्रैल 2006 में सातों पूंजीवादी राजनीतिक पार्टियों के नेतृत्व में जनांदोलन शुरू हुआ तो शहरों की वे शक्तियां भी राजशाही के खिलाफ सक्रिय तौर पर गोलबंद हो गई जो इन पार्टियों के साथ थीं या जिनका ये पार्टियां प्रतिनिधित्व करती थीं। जनयुद्ध के आधार

क्षेत्र की जनता या इसके साथ खड़ी जनता तो पहले से ही राजशाही के खिलाफ खड़ी थी। ऐसे में राजशाही के तेजी से पांव उखड़ गये और उसने कुछ दिनों में ही आत्मसमर्पण कर दिया।

राजशाही के आत्मसमर्पण के साथ ही नया वर्गीय शक्ति संतुलन तुरंत उभर कर सामने आगे आ गया। यही नहीं, इसने तुरंत ही नये संघर्षों में अपने आप को अभिव्यक्त करना शुरू कर दिया। इस संतुलन का सारतत्व यह था कि सर्वहारा और बुर्जुआ दोनों शक्तियां लगभग बराबरी की अवस्था में थीं और दोनों तत्काल एक दूसरे को मात नहीं दे सकती थीं। बुर्जुआ शक्तियों को यह अतिरिक्त लाभ हासिल था कि समाज की पुरातन शक्तियां (राजशाही–सामंतशाही के बचे तत्व) उनका साथ दे रही थीं और पुराने समाज की जड़ता उनकी स्वाभाविक मित्र थी। (साथ ही उन्हें भारतीय विस्तारवादियों और साम्राज्यवादियों का पूरा समर्थन हासिल था) उन्हें बस बदलाव की प्रक्रिया को लम्बे समय तक खींचना था और इस बीच वे जड़ता की शक्ति के हावी हो जाने के कारण विजयी हो जाते। बाद के समय में उन्होंने मूलतः इसी रणनीति पर काम किया–बदलाव की हर प्रक्रिया को बाधित करना और उसे लम्बा खींचना। इसका अंतिम परिणाम यह हुआ कि दो साल के कार्यकाल वाली संविधान सभा चार साल तक चलने के बाद भी बिना नया संविधान निर्मित किये भंग हो गई।

इसकी शुरुआत अप्रैल 2006 में विद्रोही जनता के नारायणहिती महल के सामने रहते ही हो गई थी। विद्रोही जनता राजमहल पर कब्जा कर राजशाही का खात्मा कर सकती थी। पर पूंजीवादी पार्टियों ने इसे नहीं होने दिया। इसका मतलब होता तुरंत ही या कुछ समय बाद सत्ता पर माओवादियों का यानी सर्वहारा पार्टी का कब्जा। पूंजीपति वर्ग के लिए तो यह कयामत की बात होती। इसीलिए जनता को इसके पहले ही रोक दिया गया और राजा ने आत्मसमर्पण कर दिया। इसके जरिये राजा नहीं बचा। उसकी राजशाही तो खत्म होनी थी और वह हो गई। इसके जरिये वस्तुतः पूंजीपति वर्ग बचा। सर्वहारा के जनयुद्ध और उसकी प्रेरणा से पैदा हुए जनांदोलन के जरिये गिरिजा प्रसाद कोईराला सरकार के रूप में पूंजीपति वर्ग सत्तारूढ़ हो गया।

इसके बाद पूंजीपति वर्ग ने बदलाव की हर प्रक्रिया को धीमा करने की कोशिश की, बदलाव के हर असर को कम करना चाहा। जिस संविधान सभा के नारे के तहत जनांदोलन खड़ा किया गया था उसे गठित करने के लिए चुनाव कराने में ही दो साल लग गये। इस दौरान जनमुक्ति सेना को बैरकों में बंद करने तथा कम्युनिस्ट यूथ लीग की भूमिका को मुद्दा बनाकर लगातार पूंजीवादी शक्तियों ने माओवादियों पर अंकुश लगाने की कोशिश की।

जब संविधान सभा गठित हो गई तो उसने राजशाही के अंत और गणराज्य की घोषणा करके तथा एक अंतरिम संविधान बनाकर देश को एक जनतांत्रिक गणराज्य का रूप दे दिया। अब संविधान सभा में संघर्ष इस बात के लिए शुरू हुआ कि क्या जनयुद्ध द्वारा जनता को हासिल उपलब्धियों को कानूनी बाना पहनाकर उन्हें अक्षुण्ण रखा जाये और नये प्रावधानों के द्वारा उन्हें आगे बढ़ाया जाये अथवा उपलब्धियों को भी पूंजीवादी शक्तियों के हितों के पक्ष में समेट दिया जाय। गावों में भूमि सुधार से लेकर जनमुक्ति सेना के नेपाली सेना में एकीकरण की शर्तों तक सभी में चार साल तक चले संघर्ष का असली सार तत्व यही है। इस संघर्ष में जो कुछ भी निकल कर आया उसमें पलड़ा पूंजीवादी शक्तियों का भारी रहा।

इस परिणाम में वस्तुगत परिस्थितियों और आत्मगत शक्तियों दोनों की भूमिका रही है। नेपाल की आंतरिक और वाह्य दोनों स्थितियां क्रांति के आगे विकास के लिए प्रतिकूल रही हैं। भारतीय विस्तारवाद और साम्राज्यवाद का दबाव क्रांति के आगे विकास में बड़ी बाधा था। नेपाल का अपना पिछड़ापन भी क्रांति के आगे विकास में बाधा बनता था। वर्गीय शक्ति संतुलन क्रांति के आगे विकास के लिए प्रतिकूल था और छः सालों में वह क्रांति के पक्ष की ओर नहीं झुका। इसने मुखर अभिव्यक्ति पाई संविधान सभा में जिसमें माओवादी सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरने के बाद भी केवल चालीस प्रतिशत सीटें ही हासिल कर सके। संविधान सभा में विरोधी पूंजीवादी शक्तियों के बहुमत के बाद वे संविधान सभा के जरिये क्रांति को बहुत आगे तक नहीं बढ़ा सकते थे।

और यहीं पर उनकी मनोगत सीमा सबसे तीखे रूप में उभर कर सामने आने लगी। माओवादियों ने जनयुद्ध के दौरान ही राजशाही के खात्मे और संविधान सभा गठित करने का नारा दिया था। सात पूंजीवादी पार्टियों के साथ समझौते के बाद जनांदोलन में यह सबका नारा बन गया।

लेकिन संविधान सभा के नारे के साथ माओवादियों ने स्वयं को रणकौशल के तहत नहीं बांधा था। यह उनके लिए रणकौशल से कहीं बढ़ कर था। और इसकी जड़ें जनवाद के बारे में उनके उन विचारों में थी जो उन्होंने 2003 से ही लगातार बढ़ते पैमाने पर करनी शुरू कर दी थीं। बहुदलीय प्रणाली से लेकर रूसी–चीनी क्रांतियों के अनुभव पर सवाल उठाने तक जो उन्होंने चिंतन पेश किया था उसका सारतत्व था बुर्जुआ जनवाद के बारे में गैर सर्वहारा दृष्टिकोण की ओर ढुलकना। महत्वपूर्ण बात यह है कि इस मामले में उनके बीच मतभेद नहीं थे और बाद के 'दक्षिण', 'वाम' और 'मध्य' सभी तब एक ही बात कर रहे थे। यही नहीं, वे इसे अपनी उपलब्धि बता रहे थे, इसे मार्क्सवाद में इजाफा घोषित कर रहे थे और इसे उन्होंने मिलजुल कर 'प्रचंड पथ' का नाम भी दे दिया था। इसमें वे लोग भी शामिल थे जो आज प्रचण्ड को संशोधनवादी घोषित कर रहे हैं।

इस वैचारिक अवस्थिति के चलते संविधान सभा और उसके भीतर बहु दलीय प्रतियोगिता उनके लिए किसी हद तक पवित्र चीज बन गई थी जिसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता था। वे उसके प्रेफमवर्क को तोड़ कर बाहर नहीं निकल सकते थे। यहां तक कि प्रचण्ड–भट्टराई को संशोधनवादी घोषित करने वाला किरन–बादल धड़ा भी संविधान सभा के बने रहते उससे बाहर निकलने की हिम्मत नहीं जुटा सका और न ही पार्टी को तोड़कर अपनी एक नयी क्रांतिकारी पार्टी बनाने का। इसके लिए वह संविधान के बन जाने का इंतजार करता रहा।

संविधान सभा में विभिन्न शक्तियों के संतुलन को देखते हुए माओवादियों के पास दो रास्ते थे और दोनों के ही अपने–अपने खतरे थे। राजशाही के खात्मे और गणराज्य की घोषणा के बाद वे संविधान सभा को बुर्जुआ के हवाले छोड़कर बाहर आ जाते और क्रांति को आगे बढ़ाने के लिए सड़क और फिर हथियारों का रास्ता अपनाते। लेकिन इसमें इस बात का खतरा था, जिसे प्रचण्ड और भट्टराई बार–बार इंगित करते हैं, कि तब माओवादियों का हश्र बर्मा के कारेन विद्रोहियों या पेरू की पार्टी जैसा होता यानी एक लम्बे संघर्ष में हारते हुए शक्तिहीन होकर अप्रासंगिक हो जाना। इसका उल्टा खतरा भी था। वह था संविधान सभा के जाल में उलझकर बुर्जुआ जनवादी दायरे में सिमट जाना। कोई दो राय नहीं कि यह बहुत विकट चुनाव था और प्रचण्ड–भट्टराई ही नहीं, किरन–बादल और गौरव ने भी पहले के बदले दूसरा रास्ता चुना। बात यह नहीं है कि उनके नेता प्रचण्ड ने उन्हें धोखा दिया। बात यह है कि उन्होंने भी अपने आप को मुगालते में रखा। वास्तव में यदि वे उस जमीन पर खड़े होते जिसकी वे बात करते हैं तो वे माओवादी पार्टी की अपनी एक तिहाई ताकत के साथ 27 मई की रात को संविधान सभा की असफलता के बाद विद्रोह कर देते। इतने उपयुक्त मौके को यूं ही गवां देने ने यह साबित किया कि वे महज वामपंथी लफ्फाजी ही कर रहे हैं। क्रांति को आगे बढ़ाने की उनके पास भी कोई वैकल्पिक योजना नहीं है।

एक रूप में देखें तो माओवादी अपनी जिस विशेषता के लिए जाने जाते हैं, वही उनकी फांस बन गई। यह विशेषता है रणकौशलात्मक लचीलापन। इसी लचीलेपन ने उन्हें जनयुद्ध से 2006 के जनांदोलन तक और फिर संविधान सभा तक पहुंचाया। लेकिन साथ ही यह भी सच है कि वे पिछले सात सालों में केवल रणकौशल ही अपनाते रहे हैं। रणनीति उनके लिए अप्रासंगिक हो गयी थी। (इसमें उनकी विचारधारात्मक अवस्थितियों ने मदद की या यूं कहें कि उन अवस्थितियों के कारण ही वे इस तरह की 'ऑल टैक्टिक्स, नो

स्ट्रेट्जी' की स्थिति तक पहुंचे) 2005 से उनके रणकौशल का नयी जनवादी क्रांति और दीर्घकालीन लोकयुद्ध की उनकी रणनीतिक धारणा से कोई संबंध नहीं रह गया था। औपचारिक तौर पर रणनीति पुरानी रही जबकि रणकौशल एक भिन्न दिशा में चलता रहा। कहीं अब जाकर प्रचण्ड–बाबूराम भट्टराई धड़ा कह रहा है कि नेपाल में जनवादी क्रांति पूरी हो गई है।

क्रांतिकारी संघर्ष में 'ऑल टैक्टिक्स, नो स्ट्रेट्जी' की स्थिति अपने आप में ही बहुत बड़ा सुधारवादी भटकाव होती है और जब यह दिक्कततलब विचारधारात्मक अवधारणाओं पर खड़ी हो तो स्थिति अत्यंत खतरनाक हो जाती है।

लेकिन इतने कठिन समय में क्रांति सम्पन्न करने का प्रयास करने वाले नेपाली कामरेडों के प्रति हमें इतना कठोर भी नहीं होना चाहिए। उनका वस्तुगत मूल्यांकन करते हुए हमें एंगेल्स के इन शब्दों को याद रखना चाहिए :

> ''सबसे उग्र पार्टी के नेता के लिए सबसे बुरी बात यह होती है कि उसे एक ऐसे समय में सरकार चलानी पड़े जब उस वर्ग के आधिपत्य के लिए तथा उस आधिपत्य के अनुरूप कदमों के लिए अभी समाज तैयार नहीं है जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है। जो वह कर सकता है वह उसकी इच्छा पर निर्भर नहीं करता बल्कि इस बात पर निर्भर करता है कि विभिन्न वर्गों के बीच अंतर्विरोध की अवस्था क्या है तथा अस्तित्व के भौतिक साधनों के विकास का स्तर, उत्पादन तथा व्यापार की अवस्था क्या है जिस पर वर्गीय अंतर्विरोध हमेशा आधारित होता है। जो उसे करना *चाहिए,* जो उसकी पार्टी उससे मांग करती है, वह फिर उस पर या वर्ग संघर्ष के विकास के स्तर या इसकी अवस्थाओं पर निर्भर नहीं करता। वह उसके द्वारा अभी तक प्रतिपादित सिद्धान्तों तथा मांगों से बंधा होता है जो, एक बार फिर, वर्तमान क्षण के वर्ग–संघर्ष या उत्पादन और व्यापार के कम या ज्यादा आकस्मिक स्तर से प्रस्थान नहीं करते बल्कि सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन के आम परिणामों के बारे में उसकी भेदी अंतर्दृष्टि से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार वह निश्चित तौर पर असमाधेय दुविधा में फंस जाता है। वह जो कर *सकता* है, वह उसके पहले के सारे कामों और सिद्धान्तों तथा उसकी पार्टी के तात्कालिक हितों का निषेध करता है तथा जो उसे करना *चाहिए* वह किया नहीं जा सकता। एक शब्द में वह अपनी पार्टी या अपने वर्ग का नहीं बल्कि ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व करने के लिए मजबूर होता है जिसके आधिपत्य के लिए अभी आंदोलन परिपक्व होता है। आंदोलन के हित में वह पराये वर्ग के हित को आगे बढ़ाने के लिए तथा अपने वर्ग को बातों व वादों और इस दावे को कि पराये वर्ग के हित ही उनके अपने हित हैं, परोसने के लिए मजबूर होता है। जो इस अकबकाहट की स्थिति में फंसता है, वह निश्चित तौर पर मारा जाता है।'' (फ्रेडरिक एंगेल्स, 'peasant War in Germany ,' Progress Publishers,Moscow, पृष्ठ 115, जोर मूल में, अनुवाद हमारा)

ये वज्र शब्द हैं पर सच्चाई को तीक्ष्णता से बयान करने वाले!

तो क्या अब नेपाली क्रांति के लिए सारी उम्मीदें खत्म हो गयी हैं? नहीं ऐसा कहना जल्दबाजी होगी। स्वयं संविधान सभा के हश्र ने ही संभावनाओं के नये द्वार खोले हैं। लगातार समझौता कर पीछे हटते हुए माओवादियों ने अंतिम समय में राज्य के संघीय ढांचे पर समझौता न कर जिस अस्थिरता को जन्म दिया वह चीजों को आगे गति दे सकती है। पूंजीवादी शक्तियों द्वारा लगातार स्थिरता की मांग ही क्रांति के रास्ते में बड़ा अवरोध थी। अब वर्तमान अस्थिरता ने उस अवरोध को किसी हद तक हटा दिया है।

संघीय ढांचे की मांग अपने आप में ही एक ऐसी मांग थी जो नेपाल के पुराने समाज के ढर्रे को तोड़ती थी। इसके द्वारा उत्पीड़ित जातियों, जनजातियों, राष्ट्रीय समूहों इत्यादि को पहली बार बराबरी का अवसर मिलना था। नेपाली समाज पर ब्राह्मण और क्षत्रिय (बहुन और क्षेत्री) जाति के अभिजातों का वर्चस्व टूटना था। इसके बिना नेपाली क्रांति के आगे विकास की बात बेमानी होती।

जिस तरह से संविधान सभा के अंतिम समय में इस मांग के लिए जन गोलबंदी हुयी उसने भी जड़ हो रही स्थिति को तोड़ने में मदद की। स्थिति यह हो गई कि नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) के भीतर तीखा विभाजन पैदा हो गया। उसके गैर बहुन–क्षेत्री सांसद संघीय ढांचे के पक्ष में हो गये। अंतिम दिन इसीलिए इन दोनों पार्टियों के नेताओं ने संविधान सभा की बैठक में न जाने का फैसला किया क्योंकि संघीय ढांचे का प्रस्ताव मतदान के लिए सदन में आने पर इनके अपने सांसदों द्वारा वह पारित हो जाता। अब ये दोनों पार्टियां इस मुद्दे पर टूटन के कगार पर खड़ी हैं।

संविधान सभा के इस तरह भंग होने ने जिस तरह की राजनीतिक अस्थिरता और उथल–पुथल को जन्म दिया है वह समाज में एक नये ध्रुवीकरण की संभावना को प्रबल बनाती है। लेकिन इस मोड़ पर सबसे बड़ा सवाल यही खड़ा हो जाता है कि क्या इसका इस्तेमाल करने के लिए माओवादी पार्टी सांगठनिक–वैचारिक तौर पर खुद को तैयार कर पायेगी? आज माओवादी पार्टी दो हिस्सों में टूट चुकी है। बहुमत वाला प्रचंड–बाबूराम भट्टराई का धड़ा पुरानी लाइन पर चल रहा है। वह पिछले सात सालों के रणकौशलों की तरह ही नये रणकौशल अपना रहा है। ये उसके अधिकाधिक बुर्जुआ जनवादी व्यवस्था में समाहन की ओर ले जा रहे हैं।

दूसरी ओर अलग हो गया किरन–गौरव धड़ा (नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी, माओवादी) बातें तो लोक गणराज्य तथा विद्रोह की कर रहा है लेकिन उसका व्यवहार जस का तस पुराना है। यह धड़ा भी पिछले सात सालों के रणकौशलों में भागीदार रहा है और यह स्वयं भी उसी तरह के रणकौशल अपनाता रहा है। ठीक अलग होते समय भी वह जिस रणकौशल की बात कर रहा था वे पुरानी श्रेणी के ही हैं (बाबूराम भट्टराई सरकार का इस्तीफा, राष्ट्रीय एकता की सरकार, गोलमेज सम्मेलन तथा नयी संविधान सभा के चुनाव नहीं)। असल में और कुछ हो भी नहीं सकता। इसकी भी वैचारिक जमीन वही है जो प्रचण्ड–बाबूराम भट्टराई के नेतृत्व वाले धड़े की। इसीलिए इसकी बातें महज वामपंथी लफ्फाजी बन जाती हैं। यदि यह वास्तव में अपनी बातों के प्रति गंभीर होता तो अब तक विद्रोह में या फिर से जनयुद्ध में उतर चुका होता। इस समय से अनुकूल स्थितियां शायद ही भविष्य में हों।

वस्तुगत तौर पर इस फूट का परिणाम यह होगा कि माओवादी शक्तियां कमजोर होंगी और बुर्जुआ–शासक वर्गीय शक्तियां मजबूत। इस बात की प्रबल संभावना है कि भविष्य में प्रचण्ड और बाबूराम भट्टराई धड़े के बीच भी फूट पड़ जाये तथा किरन–गौरव धड़ा भी अपनी किसी निश्चित दिशा के अभाव में फूट दर फूट का शिकार हो जाये। वामपंथी लफ्फाजी इसमें मदद करेगी। ऐसा होने पर नेपाली क्रांति के आगे बढ़ पाने की रही सही संभावना भी समाप्त हो जायेगी। तब सारा कुछ अंततः बुर्जुआ जनवाद तक सिमट कर रह जायेगा जो अभी ही स्थापित हो चुका है।

प्रचण्ड–बाबूराम भट्टराई धड़ा अभी भी एकता की बात करता है। लेकिन यह एकता हवा में कायम नहीं हो सकती। जिस वैचारिक मतभेद ने पार्टी को इस अवस्था तक पहुंचाया है उसे किसी रंग–रोगन से नहीं ढंका जा सकता। लेकिन इस वैचारिक मतभेद को दूर करने और नयी जमीन पर वैचारिक एकता कायम करने के लिए पूरी पार्टी को ही खंगालना होगा। किरन–बादल–गौरव धड़ा 2005 से अपनाये गये रणकौशलों और व्यावहारिक निर्णयों की तो बात करता है पर वह उन सैद्धान्तिक अवस्थितियों की ओर नहीं जाता जो पूरी पार्टी ने 2003 से ग्रहण की थी और जिन पर इस धड़े की भी सहमति थी। इन सैद्धान्तिक अवस्थितियों ने ही बाद के सारे सही गलत रणकौशलों के लिए सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया। आज यदि नेपाली क्रांति को बुर्जुआ जनवादी गणराज्य के फ्रेमवर्क से बाहर ले जाना है तो शुरुआत उन गलत सैद्धान्तिक अवस्थितियों की समीक्षा से ही होगी।

यहां से शुरू कर जो वैचारिक एकता कायम होगी वह पूरी पार्टी की सांगठनिक एकता की भी जमीन तैयार करेगी। इस वैचारिक सांगठनिक एकता के बल पर फिर नेपाली क्रांति को आगे बढ़ाने के लिए नयी रणनीति और नये रणकौशल विकसित किये जा सकते हैं।

नेपाली सर्वहारा ही नहीं दुनिया का सर्वहारा भी नेपाली कामरेडों से इसी की उम्मीद करता है। परन्तु उम्मीद के साथ वह इस वस्तुगत सच्चाई से भी वाकिफ है कि माओवादी पार्टी दो हिस्सों में टूट चुकी है तथा क्रांति विरोधी शक्तियां और ज्यादा मजबूत हो गयी हैं। हां, अभी भी नेपाली समाज स्थिरता से बहुत दूर है। ध्रुवीकरण की प्रक्रिया जारी है। नेपाली क्रांति एक नये मोड़ पर खड़ी है। यहां से वह आगे भी जा सकती है या फिर सारा कुछ वर्तमान बुर्जुआ जनवाद तक सिमट भी सकता है।

यदि निकट भविष्य में सारा कुछ बुर्जुआ जनवाद तक सिमट भी जाता है तब भी नेपाली क्रांति की यह उपलब्धि तो होगी ही कि इसने नेपाल को एक नये चरण में पहुंचा दिया। नेपाल समाजवादी क्रांति की नयी मंजिल में पहुंच गया है। बस तब इतना ही होगा की यह समाजवादी क्रांति वर्तमान क्रांति की निरन्तरता में नहीं होगी बल्कि वह एक नयी क्रांति होगी। वह वास्तव मे विश्व समाजवादी क्रांति की नयी श्रृंखला की कड़ी होगी। वर्तमान नेपाली क्रांति बीसवीं सदी की क्रांतियों की श्रृंखला की छूटी हुयी कड़ी थी जो इक्कीसवीं सदी में सम्पन्न हो रही थी। भविष्य की नेपाली समाजवादी क्रांति इक्कीसवीं सदी की समाजवादी क्रांतियों की नयी श्रृंखला की एक कड़ी होगी। (यह समाजवादी क्रांति नेपाल के बचे–खुचे जनवादी कार्यभारों को भी पूरा करेगी।) इसके लिए नेपाली सर्वहारा को नये सिरे से तैयारी करनी पड़ेगी। वर्तमान क्रांति का सार–संकलन उसके लिए कुछ उपयुक्त सबक भी मुहैय्या करायेगा।